<u>प्रकाशनयोग्य</u>

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार

<u>आपराधिक अपील संख्या 406 वर्ष 2018</u>

<u>एस. एल. पी. अपराधिक संख्या 1994/2018 से उत्पन्न</u>

सत्येन्द्र कुमार मेहरा

@ सतेंद्र कुमार मेहरा .... याचिकाकर्ता

बनाम

झारखंड राज्य .... प्रतिवादी

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357(2) - अपीलकर्ता पर IPC की धारा 420, 467, 468, 471 सपठित धारा 120-B के तहत दंडनीय अपराध के लिए विचारण किया गया था - विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को दोषी ठहराया और जुर्माने के साथ सजा सुनाई | अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की और सजा के निलंबन के लिए आवेदन भी दायर किया - उच्च न्यायालय ने सजा के निलंबन के लिए आवेदन को स्वीकार कर लिया, हालांकि, अपीलकर्ता को अधिरोपित जुर्माने की राशि निचली अदालत के समक्ष जमा करने का निर्देश दिया - क्या, द. प्र. स. की धारा 357(2) के आधार पर कथित जुर्माना, जो कि सजा का भाग था, अपील के फैसले तक स्वतः ही स्थगित हो गया था और उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता द्वारा जमा करने का निर्देश नहीं दिया गया होगा - निर्धारित किया गया: उच्च न्यायालय के आदेश में कोई दोष नहीं है - वर्तमान मामले में, द. प्र. स. की धारा 357(2) आकर्षित नहीं हुआ क्योंकि सजा के भाग के रूप में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने में से किसी मुआवजे के भुगतान का कोई निर्देश नहीं था - द. प्र. स. की धारा 357(2), द. प्र. स. केवल तब लागू होती है जब की धारा 357(1), द. प्र. स. के तहत सजा के रूप में अधिरोपित जुर्माने का उपयोग करते हुए मुआवजे के भुगतान का कोई आदेश या धारा 357(3), द. प्र. स. के तहत निर्देशित मुआवजे का आदेश दिया गया है - प्रस्तुत मामला न तो धारा 357(1), द. प्र. स. का मामला है और न ही धारा 357(3) का इसलिए द. प्र. स. C. की धारा 357 की उप-धारा (2) स्पष्ट रूप से लागू नहीं होता।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 357(2) - उद्देश्य और लक्ष्य - निर्धारित किया गया: धारा 357(1), द. प्र. स. में कुछ परिस्थितियों में अधिरोपित जुर्माने का पीड़ित को भुगतान किए जाने वाले मुआवजे के रूप में उपयोग

करने की परिकल्पना की गई है - धारा 357 की उप-धारा (2) में यह प्रतिबंध लगाया गया है कि ऐसा भुगतान अपील के लिए अनुज्ञात अवधि के समाप्त हो जाने तक या यदि अपील दायर कर दी गई है तो उस पर फैसला होने तक नहीं किया जाएगा - विधानमंडल इस बात से अवगत था कि यदि भुगतान किए गए मुआवजे का उपयोग किया गया तो पीड़ित से, जिसे मुआवजे का भुगतान किया गया है, उपयोग की गई कथित राशि को वसूलने के लिए उपयुक्त उपाय । मानदंड नहीं हो सकते हैं इसलिए उप-धारा (2) में भुगतान में प्रतिबंध को जोड़ा गया है - इस प्रकार सर्वोत्तम रूप से, द. प्र. स. की धारा 357 की उप-धारा (2) एक प्रावधान है जो अपील की अवधि समाप्त होने तक या यदि दायर कर दी गई है तो उसके फैसले तक निर्णीत मुआवजे की राशि के उपयोग को स्थगित करता है या रोक लगाता है - प्रावधान किसी भी तरह से अपील के लंबित रहने के दौरान जुर्माने की सजा को स्थगित नहीं करता है।

अपील को खारिज करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

1. जुर्माना, विभिन्न परिस्थितियों में, जैसा कि धारा 357(1), द. प्र. स. में उल्लिखित है, क्षतिपूर्ति \ मुआवजे के रूप में उपयोग किये जाने के लिए परिकल्पित है। द. प्र. स. की धारा 357 की उप-धारा (2) को द. प्र. स. की धारा 357 की उप-धारा (1)में कही गई बातों के संदर्भ में जोड़ा गया है। द. प्र. स. की धारा 357 की उप-धारा (2) में प्रयुक्त निर्णायक शब्द हैं "ऐसा कोई भुगतान अपील दायर करने के लिए अनुज्ञात अवधि के समाप्त हो जाने से पहले या यदि अपील दायर की जाती है तो उसके फैसले से पहले, नहीं किया जायगा"। इस प्रकार, धारा 357(2), द. प्र. स. के तहत जो प्रीतिबंधित है वह यह है कि जुर्माने का उपयोग करते हुए मुआवजे का भुगतान अपील दायर करने के लिए अनुज्ञात अवधि समाप्त हो जाने तक या यदि अपील दायर कर दी गयी है तो अपील के निर्णय से पहले नहीं किया जाना है। इसमें सजा के स्थगन की कोई अवधारणा शामिल नहीं है। [पैरा 14] [1041-सी-डी]

2. धारा 357, द. प्र. स. में एक प्रतिबंध अंतर्विष्ट है कि जुर्माने की सजा का निर्णय सुनाते समय, जुर्माने का उपयोग मुआवजे के भुगतान के लिए तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उसमें उल्लिखित आकस्मिकता उत्पन्न न हो जाए। न्यायालय द्वारा दी गई सजा, जुर्माने की सजा को शामिल करते हुए, धारा 357(2), द. प्र. स. में अंतर्विष्ट प्रतिबंध से किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होता है। धारा 357(2), द. प्र. स. का संचालन धारा 357(1) और (3), द. प्र. स. द्वारा परिकल्पित मुआवजे के भुगतान तक सीमित है। धारा 357, द. प्र. स. का शीर्षक अर्थात् "मुआवजा देने का आदेश" तथा धारा की अंतर्वस्तु केवल एक निष्कर्ष पर ले जाती है कि संपूर्ण प्रावधान अधिरोपित जुर्माने में से मुआवजे के भुगतान के संबंध में जोड़ा गया है अथवा जब न्यायालय ऐसी सजा अधिरोपित करता है जुर्माना जिसका भाग नहीं है, न्यायालय मुआवजे के रूप में ऐसी राशि का भुगतान उस व्यक्ति को, जिसे क्षति हुई है, करने का निर्देश दे सकता है। इस प्रकार, धारा 357, द. प्र. स. का विचारण न्यायालय द्वारा निर्णीत सजा के निलंबन से कोई लेना-देना नहीं है और अभियुक्त पर अधिरोपित जुर्माने की सजा धारा 357(2), द. प्र. स. से किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होती है। प्रस्तुत मामला ऐसा नहीं है जिसमें विचारण न्यायालय ने अधिरोपित जुर्माने में से किसी मुआवजे का भुगतान किसी व्यक्ति को करने का निर्देश दिया हो। विचारण न्यायालय के आदेश में मुआवजे के भुगतान के लिये कोई निर्देश नहीं है और न ही प्रस्तुत

मामला धारा 357(1), द. प्र. स. के उप-खंड (क) से (घ) में उल्लिखित परिस्थितियों के अंतर्गत आता है। प्रस्तुत मामला धारा 357(3), द. प्र. स. का भी मामला नहीं है। इसलिए धारा 357(2) , द. प्र. स. की प्रयोज्यता का कोई सवाल ही नहीं है। धारा 357, द. प्र. स. का शीर्षक धारा के लक्ष्य और उद्देश्य को प्राप्त करने में पर्याप्त प्रकाश डालता है। धारा 357, द. प्र. स. केवल तभी लागू होता है, जब न्यायालय मुआवजे के भुगतान का आदेश देता है। किसी अन्य मामले में धारा 357 लागू नहीं होता है। यह सुस्थापित है कि जब धारा की व्याख्या में कोई संदेह हो तब धारा का शीर्षक एक भूमिका निभाता है। [पैरा 15] [1041-एफ-एच; 1042-ए-सी]

3. धारा 357 (1) , द. प्र. स. में कुछ परिस्थितियों में अधिरोपित जुर्माने का उपयोग मुआवजे के रूप में पीड़ित को भुगतान किए जाने की परिकल्पना की गई है। उप-धारा (2) में एक प्रतिबंध लगाया गया है कि ऐसा भुगतान अपील के लिए अनुज्ञात अवधि के समाप्त हो जाने तक या यदि अपील दायर कर दी गई है तो उसके फैसले तक नहीं किया जाएगा। विधायिका इस बात से अवगत थी कि यदि भुगतान किए गए मुआवजे का उपयोग किया गया तो पीड़ित से, जिसे मुआवजे का भुगतान किया गया है, उपयोग की गई कथित राशि को वसूलने के लिए उपयुक्त उपाय \ मानदंड नहीं हो सकते हैं इसलिए उप-धारा (2) में भुगतान में प्रतिबंध को जोड़ा गया है। इस प्रकार सर्वोत्तम रूप से, द. प्र. स. की धारा 357 की उप-धारा (2) एक प्रावधान है जो अपील की परिसीमा समाप्त होने तक या यदि दायर कर दी गई है तो उसके फैसले तक निर्णीत मुआवजे की राशि के उपयोग को स्थगित करता है या रोक लगाता है। प्रावधान किसी भी प्रकार से अपील के लंबित रहने के दौरान जुर्माने की सजा को स्थगित नहीं करता है। इसलिए भुगतान मे एक प्रावधान है जो अपील की सीमा समाप्त होने तक या दायर कर दिया गया है तो उसके फैसले तक दिए गए मुआवजे की राशि के उपयोग को स्थगित करता या रोक देता है। प्रावधान अपील के लंबित रहने के दौरान किसी भी प्रकार से जुर्माने की सजा को स्थगित नहीं करता है। जिस उद्देश्य के लिए धारा 357, द. प्र. स. की उप-धारा (2) अधिनियमित की गई है वह, जैसा ऊपर उल्लेखित है, उससे भिन्न है और यह कभी भी अभियुक्त पर अधिरोपित जुर्माने की सजा को स्थगित करने पर विचार नहीं करता है। [पैरा 33] [1052-एच; 1053-ए-सी]

4. धारा 357(2), द. प्र. स. प्रस्तुत मामले में आकर्षित नहीं हुआ क्योंकि सजा के भाग के रूप में विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित जुर्माने में से किसी मुआवजे के भुगतान का कोई निर्देश नहीं था। धारा 357(2), द. प्र. स. केवल तब लागू होती है जहां धारा 357(1), द. प्र. स. के अधीन सजा के रूप में अधिरोपित जुर्माने का उपयोग करते हुए मुआवजे के भुगतान का या मुआवजे का, जैसा की धारा 357(3), द. प्र. स. में निर्देशित है, कोई आदेश दिया गया है। प्रस्तुत मामला न तो धारा 357(1), द. प्र. स. का मामला है और न ही धारा 357(3) का, अतः धारा 357, द. प्र. स. की उप-धारा (2) स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती है। [पैरा 37] [1054-ए-बी]

केदार नाथ बनाम हरियाणा राज्य ***2006 (3) पी.एल.आर 194*** *- विभेदित।*

भरत मंडल पुत्र सीताराम मंडल एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, ***2012 (2) पी.एल.जे.आर 855;*** *दिलीप एस. धानुकर बनाम कोटक महिंद्रा कंपनी लिमिटेड एवं अन्य* ***(2007) 6***

एस.सी.सी 528: [2007] 4 एस। सी.आर 1122; *के.सी.सरीन बनाम सी.बी.आई चंडीगढ़* ***(2001) 6 एस. सी.सी 584 : [2001]*** *1 अनुपूरक* ***एस.सी.आर 224*** *- अप्रयोज्य।*

स्टैनी फेलिक्स पिंटो बनाम जांगिड़ बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य, ***(2001) 2 एस.सी.सी 416 : [2001] 1 एस.सी.आर 390****; भींका एवं अन्य बनाम चरण सिंह,* ***ए.आई.आर 1959 एस.सी 960 : [1959] अनुपूरक एस.सी.आर 798****; एनसी ढौंडियाल बनाम भारत संघ एवं अन्य,* ***(2004) 2 एस.सी.सी 579 : [2003] 6*** *अनुपूरक* ***एस.सी.आर 674;*** *ईरीगेसन इंजीनियरिंग कंपनी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारतीय लघु-स्तरीय औद्योगिक विकास बैंक (सिडबी)* ***2003 (6) कर्न|. एल. जे 387*** *हरि सिंह बनाम सुखबीर सिंह एवं अन्य* ***(1988) 4 एस.सी.सी 551 : [1988] 2*** *अनुपूरक* ***एस.सी.आर 571 - संदर्भित।***

<u>निर्णय विधि निर्देश</u>

[2001] 1 एससीआर 390 पैरा. 8 को संदर्भित किया गया

[1959] अनुपूरक एससीआर 798 पैरा 15 को संदर्भित किया गया

[2003] 6 अनुपूरक एससीआर 674 पैरा 16 को संदर्भित किया गया

[2007] 4 एससीआर 1122 लागू नहीं पैरा 17

2003 (6) करएलजे 387 पैरा 26 को संदर्भित किया गया

2006 (3) पीएलआर 194 पैरा 27 को अलग किया गया

2012 (2) पीएलजेआर 855 पैरा 29 को संदर्भित किया गया

[1988] 2 अनुपूरक एससीआर 571 पैरा 32 को संदर्भित किया गया

[2001] 1 अनुपूरक एससीआर 224 लागू नहीं पैरा 35

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार : आपराधिक अपील संख्या 406/2018

आपराधिक अपील (एसजे) संख्या 176/2018 में आई.ए. संख्या 892/2018 में झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के दिनांक 23.02.2018 के निर्णय एवं आदेश से।

सुनील कुमार, वरिष्ठ अधिवक्ता, हिमांशु शेखर - अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता।

अमन लेखी, ए.एस.जी., राजीव नंदा, टी.ए. खान, बी.वी. बलरामदास - उत्तरवादी की ओर से अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय **अशोक भूषण, न्यायमूर्ति** द्वारा सुनाया गया। 1. यह अपील झारखंड उच्च न्यायालय रांची के आपराधिक अपील संख्या 176/2018 के आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर आई. ए. नंबर. 892/2018 को स्वीकार करते हुए अपीलकर्ता की सज़ा को निलंबित करने का निर्देश दिया है। उच्च न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि अपीलकर्ता को निचली अदालत द्वारा दी गई जुर्माना दण्डादेश की राशि भी जमा करनी होगी। अपीलकर्ता केवल आदेश के उस हिस्से से व्यथित है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने जुर्माना राशि जमा करने का निर्देश दिया था।

2. अपीलकर्ता 1996 के आर.सी. केस संख्या 68(ए) राज्य (सी.बी.आई. के माध्यम से) बनाम लालू प्रसाद @ लालू प्रसाद यादव एवं अन्य में अभियुक्त था। अभियुक्तों पर भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी/409, 420, 467, 468, 471 और 477ए के साथ भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(सी) और (डी) तथा 13(2) के तहत दंडनीय अपराध के लिए मुकदमा चलाया गया। ट्रायल कोर्ट ने 24.01.2018 के आदेश द्वारा अभियुक्त को दोषी ठहराया और सज़ा सुनाई। अपीलकर्ता, जो अभियुक्तों में से एक था, को ट्रायल कोर्ट द्वारा निम्नलिखित सज़ा सुनाई गई:

> "44. सत्येंद्र कुमार मेहरा को भारतीय दंड संहिता की धारा 120बी/420, 120बी/467, 120बी/468 और 120बी/471 के तहत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया गया :
>
> आईपीसी की धारा 120बी/420 के तहत 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ पांच(05) साल की कठोर कारावास और जुर्माना न चुकाने पर तीन (03) महीने की कठोर कारावास। आईपीसी की धारा 120बी/467 के तहत 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ पांच (05) साल की कठोर कारावास और जुर्माना न चुकाने पर तीन (03) महीने की कठोर कारावास। आईपीसी की धारा 120बी/468 के तहत 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ पांच(05) साल की कठोर कारावास और जुर्माना न चुकाने पर तीन (03) महीने की कठोर कारावास। आईपीसी की धारा 120बी/471 के तहत 25,000 रुपये के जुर्माने के साथ पांच(05) साल की कठोर कारावास और जुर्माना न चुकाने पर तीन (03) महीने की कठोर कारावास। सभी सजाएँ एक साथ चलेंगी और बिताई गई अवधि को घटाया जाएगा।"

3. उपरोक्त दोषसिद्धि और सजा के आदेश से व्यथित होकर अपीलकर्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 176/2018 दायर की। अपीलकर्ता ने सजा के निलंबन की प्रार्थना करते हुए आवेदन भी दायर किया। सुनवाई के बाद, उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को सजा के निलंबन का विशेषाधिकार प्रदान करते हुए आवेदन स्वीकार कर लिया और अपीलकर्ता को 50,000/- रुपये के जमानत बांड साथ दो सुरक्षियों के देने पर, जमानत पर रिहा करने का निर्देश दिया। हालांकि, आवेदन स्वीकार करते हुए उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्देश पारित किए:

> "अपीलकर्ता को निचली अदालत द्वार अधिनिर्णित जुर्माना राशि भी जमा करनी होगी।"

4. अपीलकर्ता, उच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्देश, निचली अदालत द्वारा अधिनिर्णित जुर्माना राशि जमा करने के ख़िलाफ़, इस अपील का रुख़ किया है।

5. हमने अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सुनील कुमार और प्रतिवादी राज्य की ओर से उपस्थित भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री अमन लेखी को सुना है।

6. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 की उपधारा (2) पर भरोसा करते हुए कहा कि चूंकि अपीलकर्ता ने पहले ही उच्च न्यायालय में अपील दायर कर दी है, इसलिए निचली अदालत द्वारा अधिरोपित

जुर्माना, अपील के निर्णय तक स्वतः ही स्थगित हो जाता है। उन्होंने कहा कि वर्तमान मामले में जुर्माना भी निचली अदालत द्वारा लगाया गया था जो कि अपील का विषय है, इसलिए धारा 357(2) द.प्र.सं. वर्तमान मामले में लागू होती है और उच्च न्यायालय को अपीलकर्ता को निचली अदालत द्वारा अधिरोपित जुर्माना राशि जमा करने का निर्देश नहीं देना चाहिए था, जो कि धारा 357(2) सीआरपीसी के प्रावधानों के विरुद्ध है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने अपने तर्क के समर्थन में दिलीप एस. दहानुकर बनाम कोटक महिंद्रा कंपनी लिमिटेड और अन्य, (2007) 6 एससीसी 528 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया।

7. भारत के विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री अमन लेखी ने अपीलकर्ता के विद्वान वकील की दलील का खंडन करते हुए दलील दिया कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को निचली अदालत द्वारा अधिरोपित जुर्माना राशि जमा करने का निर्देश देकर कोई गलती नहीं की। उन्होंने कहा कि द.प्र.सं. की धारा 357(2) के प्रावधान वर्तमान मामले में लागू नहीं होते। उन्होंने कहा कि धारा 357 द.प्र.सं. की उपधारा (2) के तहत जो विचार किया गया है वह " धारा 357(1) द.प्र.सं. में परिकल्पित मुआवजे का भुगतान " है। उन्होंने कहा कि मुआवजे के भुगतान पर रोक जुर्माने पर रोक से पूरी तरह अलग है जो अभियुक्त पर अधिरोपित सजा का एक हिस्सा है।

8. उन्होंने कहा कि इस न्यायालय ने स्टैनी फेलिक्स पिंटो बनाम जांगिड़ बिल्डर्स प्राइवेट लिमिटेड और अन्य (2001) 2 एस.सी.सी 416 में भी उच्च न्यायालय द्वारा पारित इसी प्रकार के आदेश को बरकरार रखा है, जहां उच्च न्यायालय ने सजा को निलंबित करने की शर्त के रूप में चार लाख रुपये का भुगतान करने का निर्देश दिया था, जो सजा के हिस्से के रूप में लगाए गए जुर्माने का हिस्सा था।

9. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने दलील दी कि स्टैनी फेलिक्स पिंटो (सुप्रा) में इस न्यायालय के फैसले को धारा 357(2) द.प्र.सं. की व्याख्या के संबंध में लागू नहीं किया जा सकता है, जिस धारा का न तो इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त मामले में उल्लेख किया गया है और न ही उस पर ध्यान दिया गया है ।

10. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। अभिलेख पर लाए गए तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ता को दी गई सजा पांच वर्ष की सज़ा थी जिसमें 25,000/- रुपये का जुर्माना और चूक होने पर तीन महीने की सज़ा थी। उक्त सजा चार मामलों में दर्ज की गई थी और सभी सजाएँ एक साथ चलनी थीं। इस प्रकार, जुर्माना सजा का हिस्सा था। वर्तमान मामले में जिस प्रश्न का उत्तर दिया जाना है, वह यह है कि क्या धारा 357(2) द.प्र.सं. के आधार पर उक्त जुर्माना जो सजा का हिस्सा था, अपील के निर्णय तक स्वतः ही स्थगित हो गया था और उच्च न्यायालय द्वारा अपीलकर्ता द्वारा जमा करने का निर्देश नहीं दिया जाना चाहिए।

11. इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें धारा 357(2) द.प्र.सं. द्वारा वर्णित वैधानिक योजना पर विचार करने की आवश्यकता है। धारा 357(2) , दंड प्रक्रिया संहिता , 1973 के अध्याय XXVII "निर्णय" का हिस्सा है। धारा 353 निर्णय, उसके उच्चारण, हस्ताक्षर, वितरण और अन्य पहलुओं से संबंधित है। धारा 354 निर्णय की भाषा और सामग्री से संबंधित है। धारा 355 मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट के निर्णय को संदर्भित करती है। धारा 356 पहले से दोषी ठहराए गए अपराधी के पते को अधिसूचित करने के आदेश से संबंधित है और फिर धारा 357 में "मुआवजा देने का आदेश" शीर्षक है। इस प्रकार, मुआवज़ा देने का आदेश निर्णय का एक हिस्सा है जहाँ न्यायालय मुआवज़े के भुगतान का निर्देश देता है।

12. धारा 357(1) द.प्र.सं. यह परिकल्पित करता है कि जब न्यायालय जुर्माने का दण्डादेश देता है या कोई ऐसा दण्डादेश देता है जिसका भाग जुर्माना भी है, तो न्यायालय निर्णय पारित करते समय वसूले गए जुर्माने का पूरा या उसका कोई हिस्सा लागू करने का आदेश दे सकता है। धारा 357 निम्नलिखित प्रभाव वाली है:

> “357. मुआवजा देने का आदेश।
>
> (1) जब न्यायालय जुर्माने का दण्ड या ऐसा दण्ड (जिसके अन्तर्गत मृत्यु दण्ड भी है) लगाता है, जिसका जुर्माना भाग है, तो न्यायालय निर्णय पारित करते समय वसूले गए जुर्माने का पूरा या उसका कोई भाग लागू करने का आदेश दे सकता है।
>
> (क) अभियोजन में उचित रूप से किए गए व्यय को चुकाने में;
>
> (ख) किसी व्यक्ति को अपराध द्वारा कारित किसी हानि या क्षति के लिए प्रतिकर का संदाय करने में, जब प्रतिकर, न्यायालय की राय में, ऐसे व्यक्ति द्वारा सिविल न्यायालय में वसूल किया जा सकता है;
>
> (ग) जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु कारित करने या ऐसे अपराध के किए जाने को दुष्प्रेरित करने के लिए किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, तब ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर देने में, जो घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 (1855 का 13) के अधीन, ऐसी मृत्यु से उन्हें हुई हानि के लिए दण्डादेशित व्यक्ति से हर्जाना वसूल करने के हकदार हैं;
>
> (घ) जब किसी व्यक्ति को किसी ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, जिसमें चोरी, आपराधिक दुर्विनियोजन, आपराधिक न्यासभंग या धोखाधड़ी सम्मिलित है, या उसने बेईमानी से चोरी की गई संपत्ति प्राप्त की है या अपने

पास रखी है, या चोरी की गई संपत्ति के निपटान में स्वेच्छा से सहायता की है, यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि वह चोरी की गई है, ऐसी संपत्ति के किसी वास्तविक क्रेता को उस संपत्ति की हानि के लिए प्रतिपूर्ति करने में, यदि ऐसी संपत्ति उस व्यक्ति के कब्जे में लौटा दी जाती है, जो उसका हकदार है।"

(2) यदि जुर्माना ऐसे मामले में लगाया जाता है, जो अपील के अधीन है, तो ऐसा कोई भुगतान अपील प्रस्तुत करने के लिए दी गई अवधि बीत जाने से पहले या, यदि अपील प्रस्तुत की जाती है, तो अपील के निर्णय से पहले नहीं किया जाएगा।

(3) जब न्यायालय कोई ऐसा दण्ड लगाता है, जिसका जुर्माना भाग नहीं है, तब न्यायालय निर्णय पारित करते समय अभियुक्त व्यक्ति को आदेश दे सकता है कि वह प्रतिकर के रूप में ऐसी रकम दे, जो आदेश में विनिर्दिष्ट की जाए, उस व्यक्ति को, जिसे उस कार्य के कारण कोई हानि या क्षति हुई है, जिसके लिए अभियुक्त व्यक्ति को ऐसा दण्डादेश दिया गया है।

(4) इस धारा के अधीन कोई आदेश अपील न्यायालय या उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा भी अपनी पुनरीक्षण शक्तियों का प्रयोग करते समय किया जा सकेगा।

(5) उसी मामले से संबंधित किसी भी बाद के सिविल मुकदमे में मुआवजा देने के समय, न्यायालय इस धारा के तहत मुआवजे के रूप में भुगतान की गई या वसूल की गई किसी भी राशि को ध्यान में रखेगा।

13. धारा 357 की उपधारा (1) में सभी परिस्थितियाँ लगाए गए जुर्माने में से प्रतिकर का भुगतान करने के निर्देश को संदर्भित करती हैं। इस प्रकार, सभी परिस्थितियाँ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जहाँ लगाया गया और वसूला गया जुर्माना उपरोक्त परिस्थितियों में लागू किया जाना है।

14. इस प्रकार यह परिकल्पना की जाती है कि जुर्माने का उपयोग द.प्र.सं.की धारा 357(1) में उल्लिखित विभिन्न परिस्थितियों में मुआवजे के लिए किया जाएगा। द.प्र.सं. की धारा 357 की उपधारा (2) को द.प्र.सं. की उपधारा (1) में कही गई बातों के संदर्भ में पेवंद लगाया गया है। द.प्र.सं.की धारा 357 की उपधारा (2) में इस्तेमाल निर्णायक शब्द हैं, "अपील पेश करने के लिए दी गई अवधि बीत जाने से पहले या अगर अपील पेश की जाती है तो अपील के फैसले से पहले <u>ऐसा कोई भुगतान नहीं किया जाएगा</u>"। इस प्रकार, द.प्र.सं.की धारा

357(2) के तहत जो निषिद्ध है वह यह है कि जुर्माने का उपयोग करके मुआवजे का भुगतान, अपील पेश करने के लिए दी गई अवधि बीत जाने तक या अगर अपील दायर कर दी जाती है तो अपील के फैसले से पहले नहीं किया जाना चाहिए।

15. अध्याय XXIX अपील से संबंधित है। उक्त अध्याय में धारा 389 "अपील लंबित रहने तक सजा का निलंबन; अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा करना" विषय से संबंधित है। धारा 389(1), द.प्र.सं.अपीलीय न्यायालय को यह आदेश देने का अधिकार देती है कि जिस सजा या आदेश के खिलाफ अपील की गई है, उसका निष्पादन निलंबित किया जाए और साथ ही, यदि वह कारावास में है, तो उसे जमानत पर रिहा किया जाए। इस प्रकार, सजा के निलंबन की शक्ति धारा 389 द.प्र.सं. से निकलती है, जहां अपीलीय न्यायालय को ऐसा आदेश पारित करने का अधिकार है। द.प्र.सं. की धारा 357 और 389 दो अलग-अलग क्षेत्रों में काम करती हैं। धारा 357 द.प्र.सं. में एक प्रतिबंध है कि जुर्माने की सजा का फैसला सुनाने पर, जुर्माने का उपयोग मुआवजे के भुगतान के लिए तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि उसमें उल्लिखित आकस्मिकता न हो जाए। जुर्माने की सजा सहित न्यायालय द्वारा दी गई सजा किसी भी तरह से द.प्र.सं. की धारा 357(2) में निहित प्रतिबंध से प्रभावित नहीं होती है। द.प्र.सं. की धारा 357(2) का संचालन, सीआरपीसी की धारा 357(1) और (3) के अनुसार मुआवजे के भुगतान तक सीमित है। द.प्र.सं.की धारा 357 का शीर्षक यानी "मुआवजा देने का आदेश" और साथ ही धारा की सामग्री केवल एक निष्कर्ष पर ले जाती है कि पूरा प्रावधान अधिरोपित जुर्माने में से मुआवजे के भुगतान के संबंध में पेवंदकारी की गयी है या जब न्यायालय सजा अधिरोपित करता है तो जुर्माना उसका हिस्सा नहीं होता है, न्यायालय मुआवजे के रूप में उस राशि का भुगतान उस व्यक्ति को करने का निर्देश दे सकता है जिसने चोट झेली है। इस प्रकार, हमारा विचार है कि द.प्र.सं.की धारा 357 का ट्रायल कोर्ट द्वारा दी गई सजा के निलंबन से कोई लेना -देना नहीं है और अभियुक्त पर लगाया गया जुर्माना किसी भी तरह से धारा 357(2) द.प्र.सं. से प्रभावित नहीं है ट्रायल कोर्ट के आदेश में मुआवजे के भुगतान के लिए कोई निर्देश नहीं है और न ही वर्तमान मामला धारा 357(1) सीआरपीसी के उपखंड (ए) से (डी) में उल्लिखित परिस्थितियों के अंतर्गत आता है। वर्तमान मामला धारा 357(3) सीआरपीसी का भी मामला नहीं है , इसलिए धारा 357(2) सीआरपीसी की प्रयोज्यता का कोई सवाल ही नहीं है। धारा 357 द.प्र.सं. का शीर्षक

धारा के उद्देश्य और प्रयोजन को खोजने में काफी प्रकाश डालता है। धारा 357 Cr.PC केवल तभी लागू होती है जब न्यायालय मुआवज़े के भुगतान का आदेश देता है। धारा 357 किसी अन्य मामले में लागू नहीं होती। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि धारा की व्याख्या में कोई संदेह होने पर धारा का शीर्षक एक भूमिका निभाता है। इस न्यायालय ने भींका और अन्य बनाम चरण सिंह , AIR 1959 SC 960 में, एक धारा की व्याख्या करते समय धारा के शीर्षक की भूमिका की जांच करते समय निम्नलिखित सिद्धांत पर ध्यान दिया;

> "15.....धारा 180 में ऐसे व्यक्ति को बेदखल करने का प्रावधान है जो बेदखल न होने पर निर्धारित समय बीतने पर वंशानुगत किरायेदार बन जाता। यदि कोई अस्पष्टता है. ----तो हमें कुछ नहीं मिलता - यह धारा को दिए गए शीर्षक और अनुसूची में दिए गए मुकदमे की प्रकृति के विवरण से दूर हो जाती है। शीर्षक इस प्रकार पाठ्य है:
>
> “बिना अधिकार के भूमि पर दखल-कब्जा करने वाले व्यक्ति को बेदखल करना।” “मैक्सवेल ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टैच्यूट्स, 10वां संस्करण, किसी खण्ड की व्याख्या में इस तरह के शीर्षक के उपयोग का दायरा इस प्रकार बताता है, पृष्ठ 50 पर:
>
> "कुछ आधुनिक क़ानूनों में धाराओं या धाराओं के समूह के आगे लगाए गए शीर्षकों को उन धाराओं की प्रस्तावना माना जाता है। वे क़ानून के स्पष्ट शब्दों को नियंत्रित नहीं कर सकते हैं, लेकिन वे अस्पष्ट शब्दों की व्याख्या कर सकते हैं।" यदि धारा में शब्दों की व्याख्या में कोई संदेह है, तो शीर्षक निश्चित रूप से हमें उस संदेह को दूर करने में मदद करता है..."

16. इसी प्रकार का प्रतिज्ञप्ति इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा एनसी ढौंडियाल बनाम भारत संघ एवं अन्य , (2004) 2 एससीसी 579 में पुनः दोहराया गया, जहां पैराग्राफ 15 में निम्नलिखित कहा गया है:

> "15.....हाशिया शीर्षक में प्रयुक्त भाषा एक और संकेत है कि यह एक क्षेत्राधिकार संबंधी सीमा है। यह व्याख्या का एक स्थापित नियम है कि प्रावधान की व्याख्या में किसी भी संदेह या अस्पष्टता को दूर करने और विधायी मंशा को समझने के लिए धारा शीर्षक या हाशिया के नोट पर भरोसा किया जा सकता है (देखें उत्तम दास चेला सुंदर दास बनाम शिरोमणि गुरुद्वारा

प्रबंधक समिति, (1996) 5 एस.सी.सी 71 और भींका बनाम चरण सिंह, एआईआर 1959 एस.सी.(960)।"

17. अब हम उस निर्णय पर आते हैं, यानी दिलीप एस. दहानुकर (सुप्रा) जिस पर अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने भरोसा किया है। उपरोक्त मामले में इस न्यायालय को द.प्र.सं. की धारा 357 की व्याख्या करने का अवसर मिला था। अपीलकर्ता आरोपी नंबर 2 था, जिसे साधारण कारावास के अलावा शिकायतकर्ता को 15 लाख रुपये का मुआवजा देने का निर्देश दिया गया था। निर्णय के पैराग्राफ 3 में तथ्यों को नोट किया गया है जो इस प्रकार है:

"3. अभियुक्त 1, मेसर्स गुडवैल्यू मार्केटिंग कंपनी लिमिटेड, जो कि कंपनी अधिनियम, 1956 के तहत पंजीकृत और निगमित कंपनी है और अभियुक्त-2, अपीलकर्ता को अधिनियम की धारा 138 से संबंधित अपराध का दोषी पाते हुए दोषसिद्धि का निर्णय और सजा दिनांक23.02.2006 यह अभिधारित करते हुए दिया गया था:

"आरोपी कंपनी 1, मेसर्स गुडवैल्यू मार्केटिंग कंपनी लिमिटेड को (नेगोशिएबुल इन्स्ट्रूमेंट ऐक्ट) परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 सहपठित धारा 141 के तहत दंडनीय अपराध कारित करने का दोषी ठहराया गया है। अभियुक्त 1 कंपनी को 25,000 रुपये (केवल पच्चीस हजार रुपये) का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई है। जुर्माना न भरने पर, अभियुक्त- 2 श्री दिलीप दहानुकर, अभियुक्त 1 के अध्यक्ष और मुकदमे में प्रतिनिधि, को 1 महीने के लिए साधारण कारावास की सज़ा भुगतनी पड़ेगी।

अभियुक्त 2 श्री दिलीप एस. दहानुकर को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 सहपठित धारा 141 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए दोषी ठहराया जाता है।

आरोपी 2 को एक माह के लिए साधारण कारावास की सजा दी जाती है।

आरोपी 2 को यह भी निर्देशित किया जाता है कि शिकायतकर्ता को द.प्र.सं. की धारा 357(3) के तहत 15,00,000 रुपये (पंद्रह लाख रुपये मात्र) का मुआवजा अदा करे । आरोपी 2 को मुआवजे की राशि 7,50,000 रुपये की दो समान मासिक किस्तों में भुगतान करने का हक़ होगा। 7,50,000 रुपये की पहली किस्त 23.3.2006 को या उससे पहले और 7,50,000 रुपये की दूसरी किस्त 24.4.2006 को या उससे पहले चुकानी होगी; मुआवजे की राशि

का भुगतान न करने पर आरोपी- 2 को 2 (दो) महीने साधारण कारावास की सज़ा भुगतनी पड़ेगी।"

18. दोषसिद्धि आदेश के विरुद्ध अपील फाइल की गई। अपीलीय न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए अभियुक्तों को उक्त तिथि से चार सप्ताह के भीतर 5-5 लाख रुपए जमा करने का निर्देश दिया। अपीलीय न्यायालय के उक्त आदेश की वैधता पर सवाल उठाते हुए रिट याचिका दायर की गई थी जिसे खारिज कर दिया गया और उसके बाद मामला इस न्यायालय में ले आया गया। इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि द.प्र. संहिता की धारा 357(2) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, आक्षेपित निर्णय पूरी तरह से अपुष्टिकृत है क्योंकि इसके तहत अध्यारोपित जुर्माने की राशि स्वतः ही निलंबित हो जाएगी।

19. उपरोक्त मामले में इस न्यायालय ने संहिता की धारा 357 की उपधारा (1), (2) और (3) पर विचार किया और पाया कि उपधारा (2) मुआवज़े के साथ-साथ उपधारा (3) के तहत निर्देश के संबंध में भी लागू होगी। पैराग्राफ 43, 44 और 45 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है:

"43. यह हमें अपील नहीं करता कि यद्यपि जुर्माने की राशि से देय मुआवजा संहिता की धारा 357 की उपधारा (2) के तहत स्थगित रहेगा, अगर उपधारा (3) के तहत मुआवजा देने का निर्देश दिया जाता है, तो वह उक्त प्रावधान को आकर्षित नहीं करेगा। (देखें पी. सुरेश कुमार बनाम आर. शंकर , [(2007) 4 एससीसी 752]।)

44. मजिस्ट्रेट जुर्माने के अलावा मुआवज़ा नहीं दे सकते। हालाँकि, जब जुर्माना लगाया जाता है, तो निजी पक्ष को इस बात पर ज़ोर देने का कोई अधिकार नहीं है कि उसे जुर्माने की राशि में से मुआवज़ा दिया जाए। धारा 357(3) के तहत मुआवज़ा देने की शक्ति एक सहायक शक्ति नहीं है। यह एक अतिरिक्त शक्ति है। (बलराज बनाम यूपी राज्य , [(1994) 4 एससीसी 29] देखें।)

45. धारा 357 की उपधारा (1) का खंड (बी) और धारा 357 की उपधारा (1) तथा धारा 357 की उपधारा (3) एक ही उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। जो आवश्यक है वह यह पता लगाना है कि विधि निर्माता का इरादा क्या है और वह उद्देश्य क्या है जिसे प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। धारा 357 की उपधारा (2) में "जुर्माना" शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें यह नहीं कहा गया है कि किस पर रोक लगाई जाएगी अर्थात जुर्माने का उपयोजन। हमारी राय में धारा 357 की उपधारा (2) किसी अन्य व्याख्या की

कल्पना नहीं करती है। यहां तक कि यह मान भी लें कि श्री ललित अपने कथन में सही थे, तब भी उपधारा (3) पूरी तरह से लागू होगी।"

20. धारा 389 सीआरपीसी का हवाला देते हुए, इस न्यायालय ने पाया कि सजा को निलंबित करना और अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा करना, जो दोषी है और जुर्माना वसूलना, संसद द्वारा संहिता के विभिन्न प्रावधानों के तहत चर्चित किया गया है। पैराग्राफ 51 में निम्नलिखित निर्धारित किया गया है:

"51. धारा 389 बिल्कुल ऐसी ही स्थिति की चर्चा नहीं करता। संहिता की धारा 389 को उसकी धारा 387 के साथ पढ़ा जाना चाहिए। सजा का निलंबन और अपीलकर्ता को जमानत पर रिहा करना, जिसे दोषी ठहराया गया है और जुर्माना वसूलना, संसद द्वारा संहिता के विभिन्न प्रावधानों के तहत व्यवहरित किया गया है। इस प्रकार, मुआवजे की वसूली के संबंध में सजा को निलंबित करने की अदालत की शक्ति जुर्माना वसूलने के निर्देश की शक्ति से भिन्न हो सकती है।"

21. इस न्यायालय ने उपरोक्त मामले में कंपनी पर अधिरोपित 25,000/- रुपए के जुर्माने और 15 लाख रूपये जो कंपनी के अध्यक्ष द्वारा मावज़े के रूप में भुगतान किए जाने का निर्देश किया गया है, के बीच अंतर को नोट किया है। पैराग्राफ 71 में उपरोक्त का उल्लेख इस प्रकार किया गया है:

“71. हम प्रथम दृष्टया यह राय रखते हैं (अपील की योग्यता पर विचार किए बिना) कि विद्वान ट्रायल जज का निर्देश कुछ हद तक अनुचित प्रतीत होता है। इस मामले में अपीलकर्ता को कारावास की सजा सुनाई गई है। कंपनी पर केवल जुर्माना लगाया गया है। इस प्रकार, सभी आशय और उद्देश्य के लिए, विद्वान ट्रायल जज ने संहिता की धारा 357 की दोनों उपधाराओं (1) और (3) को लागू किया है। इस मामले में अपीलकर्ता का दायित्व परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 के अनुसार एक प्रतिनिधिक दायित्व था। इस प्रश्न पर इस दृष्टिकोण से भी विचार किया जाना चाहिए कि विद्वान ट्रायल जज ने कंपनी पर केवल 25,000 रुपये का जुर्माना लगाना उचित समझा। यदि ऐसा है, तो यह प्रश्न उठेगा कि क्या कंपनी के अध्यक्ष द्वारा 15 लाख रुपये की राशि का मुआवजा अदा करने का निर्देश दिया जाना चाहिए था। हमें लगता है कि ऐसा नहीं है।”

22. इस न्यायालय ने अंततः अपीलकर्ता को मुआवजे के लिए एक लाख रुपये जमा करने का निर्देश दिया और पैराग्राफ 72 में अपना निष्कर्ष दर्ज किया जो इस प्रकार है:

> "72. अतः हमारा यह मत है कि:
>
> (i) इस प्रकृति के मामले में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 की उपधारा (2) तब भी लागू होगी, जब अपीलकर्ता को मुआवजा देने का निर्देश दिया गया हो;
>
> (ii) अपीलीय न्यायालय, हालांकि, सजा को निलंबित करते समय, अपीलकर्ता को निबंधित करने का अधिकार था। हालांकि, अपील पर विचार करने के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं रखी जा सकती, जो एक संवैधानिक और वैधानिक अधिकार है;
>
> (iii) मुआवजे की राशि उचित राशि होनी चाहिए;
>
> (iv) न्यायालय को ऐसी राशि निर्धारित करते समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 की उपधारा (5) में निर्दिष्ट कारक सहित सभी प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखना चाहिए;
>
> (v) किसी भी अनुचित राशि का मुआवजा देने का निर्देश नहीं दिया जा सकता।

23. यह न्यायालय, उपरोक्त मामले में, मुआवज़े के भुगतान के प्रश्न पर विचार कर रहा था, जिसे न्यायालय ने धारा 357 द.प्र.सं. की उपधारा (3) के तहत दिया था। न्यायालय जुर्माने के मामले पर विचार नहीं कर रहा था, जो कि सजा का हिस्सा था। इसलिए, न्यायालय के पास वर्तमान मामले में उठे मुद्दे पर विचार करने का कोई अवसर नहीं था। हम, वर्तमान मामले में, किसी भी मुआवजे के भुगतान या किसी भी ऐसे मुआवजे के भुगतान के संबंध में धारा 357 (2) द.प्र.सं. की प्रयोज्यता से सम्बध्द नहीं हैं।

24. हमें स्टैनी फेलिक्स पिंटो (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। उपरोक्त मामले में कारावास की सजा के साथ-साथ परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत जुर्माना भी लगाया गया था । उच्च न्यायालय ने पुनरीक्षण याचिका पर विचार करते हुए इस शर्त के साथ सजा को निलंबित कर दिया कि जुर्माने का कुछ हिस्सा एक निश्चित समय के भीतर न्यायालय में विप्रेषित कर दिया

जाए, जिस निर्देश को इस न्यायालय में चुनौती दी गई थी। इस न्यायालय ने उक्त निर्देश को बरकरार रखा। पैराग्राफ 2 में निम्नलिखित अभिव्यक्ति दी गयी:

> "2. जब किसी व्यक्ति को परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत दोषसिध्द किय गया और कारावास और जुर्माने का दण्डागदेश दिया गया, और उसने सजा के निलंबन के लिए वरिष्ट न्यायालय का रुख किया। उच्च न्यायालय ने उसकी पुनरीक्षण याचिका पर विचार करते हुए यह शर्त लगाकर सजा के निलंबन को मंजूरी दे दी कि निर्दिष्ट समय के भीतर जुर्माने का कुछ हिस्सा अदालत में विप्रेषित करे। यह याचिका उक्त निर्देश के विरुद्ध दायर है। हमारे विचार में उच्च न्यायालय ने यह सही ढंग से और न्याय के हित में किया है। हम महसूस करते हैं कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 138 के तहत अपराध के लिए सजा को निलंबित करते समय यह युक्तियुक्त है कि अदालत यह शर्त लगाए कि जुर्माने का कुछ हिस्सा एक निश्चित अवधि के भीतर विप्रेषित कर दिया जाए। यदि जुर्माने की राशि भारी है, तो अदालत कम से कम उसके एक हिस्से को विप्रेषित करने का निर्देश दे सकती है, क्योंकि दोषी व्यक्ति चाहता है कि अपील के लंबित रहने के दौरान सजा को निलंबित रखा जाए। इस मामले में अपीलकर्ता की शिकायत यह है कि उच्च न्यायालय ने उसे सजा को निलंबित करने की शर्त के रूप में चार लाख रुपये की बड़ी राशि विप्रेषित करने के लिए कहा है। ट्रायल कोर्ट द्वारा लगाए गए जुर्माने की कुल राशि (बीस लाख रुपये) पर विचार करते समय ऐसी शर्त लगाने में कुछ भी अनुचित या अविवेकपूर्ण नहीं है। इसलिए, विवादित आदेश में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है। परिणामतः प्रतिवादी को कोई नोटिस जारी करने की आवश्यकता नहीं है। तदनुसार अपील खारिज की जाती है।"

25. यह सच है कि इस न्यायालय ने उक्त मामले पर निर्णय देते समय धारा 357(2), द.प्र.सं. पर विचार नहीं किया। अपीलकर्ता के विद्वान वकील का यह तर्क सही है कि उपरोक्त निर्णय को धारा 357(2), द.प्र.सं. की प्रयोज्यता पर कोई न्यायनिर्धारण करने वाला नहीं माना जा सकता।

26. हम सिंचाई इंजीनियरिंग कंपनी (भारत) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक (एस.आई.डी.बी.आई), 2003 (6) करनाटक.एल.जे 387 में कर्नाटक उच्च न्यायालय के फैसले का भी हवाला दे सकते हैं, जहां धारा 357(2), द.प्र.सं. की व्याख्या करते समय, कर्नाटक उच्च न्यायालय ने अभिव्यक्त किया था कि, द.प्र.सं. में पाया गया शब्द " पेमेंट-संदाय" अभियुक्त द्वारा मुआवजे या जुर्माना राशि के 'डिपोज़िट-

जमा' को संदर्भित नहीं करता है। उच्च न्यायालय के समक्ष मामले में अपीलकर्ता को जुर्माने की सजा का दण्डादेश दिया गया था। अपील में उच्च न्यायालय ने इस शर्त पर सजा को निलंबित करने का निर्देश दिया कि अपीलकर्ता कुल जुर्माने राशि का 20% जमा करेगा, जिसे उच्च न्यायालय के समक्ष इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि धारा 357(2), द.प्र.सं. के मद्देनजर, अपीलीय न्यायालय द्वारा उन्हें कुल जुर्माने का 20% जमा करने के लिए कहना सही नहीं था। पैराग्राफ 8,9 और 10 में निम्नलिखित अभिकथन किया गया था:

> “8. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(2) क्या कहती है, वह निम्नलिखित है:
>
> "यदि जुर्माना ऐसे मामले में किया जाता है जो अपीलनीय है तो ऐसा कोई संदाय,अपील उपस्थित करने के लिए अनुज्ञात अवधि के बीत जाने से पहले या, यदि अपील उपस्थित की जाती है, तो उस के विनिश्चय के पूर्व, नहीं किया जाएगा"।
>
> इसमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि अपीलीय न्यायालय, अभियुक्त पर लगाई गई सजा को निलंबित करते समय, जुर्माने की राशि का एक हिस्सा जमा करने की शर्त नहीं लगा सकता है। यह सही है कि याचिकाकर्ताओं के लिए जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, उसके अनुसार कानून के उक्त प्रावधान के तहत लगाया गया स्थगन संहिता की धारा 357 की उपधारा (3) के तहत दिए गए मुआवजे पर भी समान रूप से लागू होता है, लेकिन यह नहीं माना जा सकता है कि अपीलीय न्यायालय सजा को निलंबित करते समय सशर्त आदेश पारित नहीं कर सकता है।
>
> 9. मेरे अनुसार, द.प्र.सं. की धारा 357(2) में पाया जाने वाला शब्द " पेमेंट-संदाय" किसी अभियुक्त द्वारा अपीलीय न्यायालय द्वारा अधिरोपित मुआवज़ा या जुर्माना के अनुसरण में दिए गए दण्डादेश को संदर्भित करता है क्योंकि मेरे विचार से, शब्द "डिपोज़िट-भुगतान" उस व्यक्ति को किए जाने वाले ,,संदाय -पेमेंट,, को संदर्भित करता है, जिसे मुआवज़ा देने का आदेश दिया गया है, न कि जुर्माना राशि, जिसमें अभियुक्त द्वारा 'डिपोज़िट-जमा' की जाने वाली मुआवज़ा राशि शामिल है। कानून के उक्त उपबंध में लगाया गया रोक अपील अवधि की समाप्ति से पहले या, जहाँ अपील की गई है, ऐसी अपील के लंबित रहने के दौरान ऐसी राशि के 'भुगतान-संदाय' के संदर्भ में है। इसलिए, धारा 357 को द.प्र.सं. की धारा 389 के साथ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है और न ही इसे पढ़ा जा सकता है। वास्तव में, रूपये 16 लाख मुआवज़ की राशि के निलम्बन सम्बंधि न तो याचिकाकर्ताओं/अपीलकर्ताओं ने आवेदन

किया, न ही अपीलीय न्यायालय ने कोई आदेश दिया। दूसरी ओर, जब उनके विरुद्ध पारित आक्षेपित सजा के निलंबन को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 389 के तहत अपीलीय न्यायालय को दी गई शक्ति के अलावा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 के परिधि या विस्तार में देखा जाए, तो यह मानने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि उन (याचिकाकर्ताओं) पर लगाए गए कुल जुर्माने की राशि का 20% जमा करने की शर्त पर सजा को निलंबित करने वाले सत्र न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में रिकॉर्ड की कोई त्रुटि या दुर्बलता या अनियमितता या अवैधता नहीं है।

10. इस मामले के मद्देनजर, न तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(2) और न ही याचिकाकर्ताओं के लिए जिस निर्णय पर भरोसा किया गया है, वह याचिकाकर्ताओं के लिए कोई मददगार है।"

27. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने अपने तर्कों के समर्थन में तीन उच्च न्यायालयों के निर्णयों, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के एक और पटना उच्च न्यायालय के दो निर्णयों पर भरोसा किया है। हमें अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा दिए गए उपरोक्त निर्णयों का संदर्भ लेने की आवश्यकता है। पहला निर्णय पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय का 2006 (3) पीएलआर 194, केदार नाथ बनाम हरियाणा राज्य में दर्ज किया गया निर्णय है। उपरोक्त मामले में, याचिकाकर्ता को 1,50,000/- रुपये की राशि के कई चेक अनादरित करने के लिए परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। याचिकाकर्ता को एक वर्ष की अवधि के लिए कठोर कारावास और 3,00,000/- रुपये का जुर्माना भरने की सजा सुनाई गई। यह भी आदेश दिया गया कि 3,00,000/- रुपये के जुर्माने में से 2,50,000/- रुपये की राशि शिकायतकर्ता को मुआवजे के रूप में दी जाए। अपील दायर की गई थी, जिसमें अपीलीय न्यायालय ने इस शर्त पर सजा को निलंबित कर दिया था कि याचिकाकर्ता ट्रायल कोर्ट के समक्ष 1,50,000/- रुपये की राशि जमा करेगा। याचिकाकर्ता ने उक्त शर्त को उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी। यह प्रस्तुत किया गया था कि धारा 357 उपधारा (2), द.प्र.सं. के अनुसार याचिकाकर्ता जुर्माना की कोई राशि भरने के ज़िम्मेदार नहीं थे।उच्च न्यायालय ने द.प्र.सं.की धारा 357(2) पर भरोसा करते हुए प्रस्तुतीकरण को स्वीकार कर लिया। निर्णय के पैराग्राफ 8 में निम्नलिखित व्यवस्था दी:

> "8. दोषसिद्धि के निर्णय और सजा के आदेश के खिलाफ याचिकाकर्ता ने अपील दायर की थी, जिसे सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया। सजा को निलंबित करते हुए अपीलीय न्यायालय ने ट्रायल कोर्ट द्वारा लगाए गए 3 लाख रुपये के जुर्माने की राशि में से 1,50,000 रुपये जमा करने की शर्त अधिरोपित की। मेरे विचार से, उक्त शर्त अधिरोपित कर याचिकाकर्ता को जुर्माने की राशि का भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया, जिसे धारा 357 , द.प्र.सं.की उपधारा (2) के अनुसार, अपील के अंतिम निर्णय तक भुगतान करने के लिए अभियुक्त उत्तरदायी नहीं है। केवल इसलिए कि 3 लाख रुपये के जुर्माने की राशि में से 2,50,000 रुपये शिकायतकर्ता को मुआवजे के रूप में भुगतान करने का आदेश दिया गया था, मेरे विचार से, जुर्माने की प्रकृति नहीं बदलती है। ट्रायल कोर्ट का निर्णय बहुत स्पष्ट है कि एक वर्ष की सजा के साथ 3 लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया था। इस मामले के तथ्य सबिता बहल के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा पूरी तरह से कवर किए गए हैं। इस प्रकार, मेरी राय में, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित सजा के निलंबन के आदेश के मद्देनजर जमानत बांड प्रस्तुत करने के समय याचिकाकर्ता को ट्रायल कोर्ट के समक्ष 1,50,000 रुपये की राशि जमा करने का निर्देश देने वाली शर्त, न्यायोचित नहीं थी।

28. उपरोक्त मामला वर्तमान मामले से स्पष्ट रूप से अलग है। उपरोक्त मामले में, धारा 357 उपधारा (1) (बी), द.प्र.सं. के अधीन मुआवजे के भुगतान के लिए निर्देश था। इसलिए धारा 357 उपधारा (2) , द.प्र.सं. पर न्यायालय द्वारा भरोसा किया गया। वर्तमान मामला अपीलकर्ता पर लगाए गए जुर्माने से किसी भी मुआवजे के भुगतान का मामला नहीं है। इस प्रकार, उपरोक्त मामला किसी भी तरह से अपीलकर्ता की मदद नहीं करता है।

29. अब हम अपीलकर्ता द्वारा भरोसा किए गए दूसरे मामले पर आते हैं, अर्थात पटना उच्च न्यायालय के खंडपीठ के फैसले भरत मंडल पुत्र सीताराम मंडल एवं अन्य बनाम बिहार राज्य , 2012 (2) PLJR 855। उपरोक्त मामले में अभियुक्तों को धारा 307/149, IPC और धारा 27 आर्म्स एक्ट के तहत दोषी ठहराया गया था। उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और साथ ही प्रत्येक को 20,000 रुपये का जुर्माना भरने का निर्देश दिया गया। अपील दायर की गई जिसमें अपीलीय न्यायालय ने जुर्माना भरने पर रोक लगाने से इनकार कर दिया। अपीलकर्ता ने जुर्माना भरने पर रोक लगाने की प्रार्थना को पुनः प्रचालित किया जिस पर उच्च न्यायालय ने विचार किया। उच्च न्यायालय ने धारा 357 उपधारा (2), द.प्र.सं. पर भरोसा किया

और अपीलकर्ता के इस रज़ाजुई को स्वीकार कर लिया कि जुर्माना नहीं भरना है। पैराग्राफ 7 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

> "7. अपीलकर्ता के विद्वान वकील श्री योगेश चंद्र वर्मा का तर्क पूरी तरह से धारा की शाब्दिक व्याख्या पर आधारित है। हमारे विचार में, श्री वर्मा द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क को स्वीकार किया जाना चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357 की उपधारा (2) को सरल पठन से हम पाते हैं कि विधायिका द्वारा लगाए गए प्रावधान में बिल्कुल भी संदिग्घता नहीं है , यह स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है कि अपील प्रस्तुत करने के लिए प्रज्ञात अवधि बीत जाने से पहले ऐसा कोई भुगतान नहीं किया जाएगा। इस प्रकार, यह किसी भी अदालत को उस अवधि के लिए भुगतान लागू करने से रोकता है, जिसमें अपील दायर की जा सकती है। फिर दूसरी बात यह उपबंधित करता है कि यदि अपील प्रस्तुत की जाती है तो अपील के निर्णय तक वसूली या भुगतान की कार्रवाई पर रोक जारी रहेगी। "अपील का निर्णय" का अर्थ केवल अपील में अंतिम निर्णय समझा जाएगा और किसी भी मध्यवर्ती चरण में कोई आदेश नहीं, क्योंकि वह अपील का फ़ैसला नहीं होगा। इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(2) को सरलता से पढ़ने पर, अधिरोपित जुर्माना, प्रथमतः अपील दायर करने के लिए उपलब्ध अवधि के लिए स्वतः ही स्थगित रहेगी और जब एक बार अपील दायर हो जाती है तो अपील के अंतिम निर्णय तक। यह स्वंय विधायिका का स्पष्ट और असंदिग्ध अधिदेश है। वह स्थिति अलग होगी, अगर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357(3) के अनुसार जुर्माना लगाने के बजाय केवल मुआवजा का निदेश दिया गया हो। ऐसे मामले में, अपीलीय न्यायालय विचाराधीन मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर इस प्रकार अधिरोपित मुआवजे पर रोक लगाने या न लगाने का न्यायिक विवेकाधिकार रखता है।"

30. उच्च न्यायालय द्वारा अवेक्षित तथ्यों से यह स्पष्ट नहीं है कि 20,000/- रुपये का जुर्माना पीड़ित को भुगतान करने का निर्देश दिया गया था । निर्णय में ऐसा कोई तथ्य अवेक्षित नहीं किया गया। यदि अधिरोपित जुर्माने में से कोई मुआवजा देने का निर्देश नहीं था, तो उक्त मामले के तथ्य वर्तमान मामले के समान हैं। हमारा मानना है कि यदि अधिरोपित जुर्माने में से कोई मुआवजा देने का निर्देश नहीं है, तो धारा 357(2), द.प्र.स.लागू नहीं होता। हमारे विचार में उच्च न्यायालय का यह सयुक्ति कि द.प्र.सं. की धारा 357 उपधारा (2) के मद्देनजर जुर्माने की वसूली स्वतः ही स्थगित हो जाएगी, उस मामले में अंतर को ध्यान में नहीं

रखता है जहां जुर्माना सजा का हिस्सा है और मुआवजा देने का निर्देश है और ऐसे मामले में जहां कोई मुआवजा देने का निर्देश नहीं है।

31. अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा जिस तीसरे मामले पर भरोसा किया गया है, वह फिर पटना उच्च न्यायालय की आपराधिक अपील (डी.बी) संख्या 529/2012 में डिवीजन बेंच का 26.06.2012 को निर्णत फैसला है, नरेश यादव@नरेश महतो एवं अन्य बनाम बिहार राज्य, । पटना उच्च न्यायालय के फैसले को अपीलकर्ता के विद्वान वकील के संक्षिप्त प्रस्तुतियों के साथ रिकॉर्ड पर रखा गया है। फैसले के अवलोकन से पता चलता है कि पटना उच्च न्यायालय ने मामले के तथ्यों और जुर्माना लगाने के संबंध में निचली अदालत द्वारा पारित आदेश की प्रकृति पर ध्यान नहीं दिया है। आवेदक ने उच्च न्यायालय के आदेश में उपांतरण के लिए प्रार्थना की थी, जिसके द्वारा जुर्माना जमा करने का निर्देश जारी किया गया था। धारा 357 उपधारा (2),द.प्र.सं. पर भरोसा किया गया और भरत मंडल एवं अन्य (सुप्रा) में पटना उच्च न्यायालय के पहले के फैसले पर भरोसा किया और आदेश दिनांक 04.06.12 के अंतिम पैराग्राफ में यह प्रबंधित करते हुए कि मामले के फ़ैसला तक अधिरोपित जुर्माना स्थगित रहेगा, आदेश को उपांतरणित कर दिया। उपरोक्त निर्णय केवल भारत मंडल एवं अन्य पर आधारित है, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, इसलिए यह निर्णय भी अपीलकर्ता की मदद नहीं करता है।

32. इस न्यायालय ने हरि सिंह बनाम सुखबीर सिंह एवं अन्य (1988) 4 एससीसी 551 में धारा 357,द.प्र.सं. के उद्देश्य और प्रयोजन पर विचार किया था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मुआवजे के भुगतान का निर्देश देने के लिए न्यायालय को दी गई शक्ति का उद्देश्य पीड़ित के लिए कुछ करना है। इस प्रावधान को हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में एक कदम आगे माना गया। पैराग्राफ 10 में निम्नलिखित संप्रेक्षण की गई थी:

> "10...यह न्यायालय को दोषसिद्धि का निर्णय देते समय पीड़ितों को मुआवजा देने की शक्ति प्रदान करता है। दोषसिद्धि के अतिरिक्त, न्यायालय अभियुक्त को आदेश दे सकता है कि वह अभियुक्त की कार्रवाई से पीड़ित को मुआवजे के रूप में कुछ राशि का भुगतान करे। यह ध्यान देने योग्य है कि न्यायालयों को मुआवज़ा अधिनिर्णय की यह शक्ति अन्य सजाओं के लिए अनुषांगिक

नहीं है, बल्कि इसके अतिरिक्त है। इस शक्ति का उद्देश्य पीड़ित को यह भरोसा दिलाना है कि उसे आपराधिक न्याय प्रणाली में भुलाया नहीं गया है। यह अपराध के प्रति उचित तरीके से मुताबक़त करने के साथ-साथ पीड़ित और अपराधी के बीच मुवाफ़िक़त स्थापित करने का एक उपाय है। यह कुछ हद तक अपराधों के प्रति रचनात्मक दृष्टिकोण है। यह बेशक हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में आगे का एक कदम है। इसलिए, हम सभी न्यायालयों को इस शक्ति का उदारतापूर्वक प्रयोग करने की सलाह देते हैं ताकि न्याय के उद्देश्यों को बेहतर तरीके से पूरा किया जा सके।"

33. द.प्र.सं. की धारा 357 की उपधारा (2) का उद्देश्य और लक्ष्य क्या है ? धारा 357 (1) , द.प्र.सं.में कुछ परिस्थितियों में लगाए गए जुर्माने का उपयोग पीड़ित को भुगतान किए जाने वाले मुआवजे के रूप में करने की परिकल्पना की गई है। उपधारा (2) में एक पेवन्दकारी की गयी है कि ऐसा भुगतान अपील के लिए दी गई अवधि बीत जाने तक या यदि अपील दायर की जाती है, तो उस पर निर्णय होने तक नहीं किया जाएगा। विधायिका इस बात से अवगत थी कि यदि भुगतान किए गए मुआवजे का उपयोग किया जाता है, तो पीड़ित से उपयोग की गई उक्त राशि को वसूलने के लिए उचित उपाय नहीं हो सकते हैं, जिसे मुआवजा अदा किया गया है, इसलिए उपधारा (2) में भुगतान पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। इस प्रकार, धारा 357 , द.प्र.सं.की उपधारा (2) एक ऐसा प्रावधान है जो अपील की सीमा समाप्त होने तक या यदि दायर की जाती है, तो उस पर निर्णय होने तक दिए गए मुआवजे की राशि के उपयोग को अलग करता है या रोकता है। यह प्रावधान किसी भी तरह से अपील के लंबित रहने के दौरान जुर्माने की सजा को नहीं रोकता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है , धारा 357 दंड प्रक्रिया संहिता की उपधारा (2) जिस उद्देश्य के लिए अधिनियमित की गई है, वह अलग है और यह अभियुक्त पर लगाए गए जुर्माने की सजा पर रोक लगाने का कभी भी कल्पना नहीं करता है।

34. हम, हालांकि, यह स्पष्ट करते हैं कि धारा 389, द.प्र.सं. तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए अपीलीय न्यायालय कारावास की सजा के साथ-साथ जुर्माने को बिना शर्त या शर्तों के साथ निलंबित कर सकता है। धारा 389, द.प्र.सं. के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय अपीलीय न्यायालय की शक्ति पर कोई पाबंदी नहीं है। अपीलीय न्यायालय सजा और जुर्माना दोनों को निलंबित कर सकता था या जुर्माना या जुर्माने के हिस्से को जमा करने का निर्देश दे सकता था।

35. अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने के.सी. सरीन बनाम सी.बी.आई. चंडीगढ़ , (2001) 6 एस.सी.सी. 584 में इस न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जहां इस न्यायालय ने निम्नलिखित संप्रेक्षण की है:

> "इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब अपीलीय न्यायालय (पी.सी) भ्र.नि. अधिनियम के तहत अपराध के लिए दोषसिद्धि और सजा को चुनौती देने वाली अपील को स्वीकार करता है , तो वरिष्ट न्यायालय को सामान्यतः अपील के निपटारे तक कारावास की सजा को निलंबित कर देना चाहिए, क्योंकि इससे इन्कार करने पर अपील निरर्थक हो जाएगी, जब तक कि अपील दायर करने के तुरंत बाद ऐसी अपील पर सुनवाई न की जा सके।"

36. उपरोक्त संप्रेक्षण इस न्यायालय द्वारा कारावास की सजा के निलंबन के संदर्भ में की गई थी। वर्तमान मामला ऐसा नहीं है जिसमें कारावास की सजा के निलंबन का प्रश्न शामिल है, बल्कि अपीलीय न्यायालय ने पहले ही कारावास की सजा को निलंबित कर दिया है। इस प्रकार उपरोक्त मामला भी वर्तमान मामले के तथ्यों में अपीलकर्ता की मदद नहीं करता है।

37. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा मानना है कि धारा 357(2),द.प्र.सं.वर्तमान मामले में लागू नहीं होता क्योंकि, सजा के हिस्से के रूप में, ट्रायल कोर्ट द्वारा अधिरोपित जुर्माने में से किसी भी मुआवजे के भुगतान का कोई निर्देश नहीं था। धारा 357 (2),द.प्र.सं. केवल तब नाफ़िज़ होता है जब धारा 357(1), द.प्र.सं. के तहत सजा के रूप में लगाए गए जुर्माने का उपयोग करके मुआवजे के भुगतान का कोई आदेश दिया जाता है या धारा 357(3), द.प्र.सं. के तहत निर्देशित मुआवजे का भुगतान किया जाता है। वर्तमान मामला न तो धारा 357(1) द.प्र.सं. का है और न ही धारा 357(3) का, इसलिए धारा 357, द.प्र.सं. की उपधारा (2) स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती है और अपीलकर्ता के विद्वान वकील द्वारा उठाए गए प्रस्तुतिकरण बिना किसी असलियत के हैं। इसलिए, हमें उच्च न्यायालय के उस आदेश में कोई कमी नहीं दिखती जिसमें उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता को ट्रायल कोर्ट द्वारा अधिरोपित जुर्माने को जमा करने का निर्देश दिया है। परिणामस्वरूप, अपील खारिज की जाती है।

..... न्यायमूर्ती

(ए.के. सीकरी)

…….…… न्यायमूर्ती

(अशोक भूषण)

नई दिल्ली,

23 मार्च, 2018

यह अनुवाद शबनम (पैनल अनुवादक) के द्वारा किया गया।